AMOGHVARTA

ISSN : 2583-3189

भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम 1857 ई. की क्रांति के इतिहास का अध्ययन और पूर्वावलोकन

ORIGINAL ARTICLE

Author
रेखा कुमारी
शोध छात्रा, इतिहास विभाग
विनोबा भावे विश्वविद्यालय
हजारीबाग, झारखण्ड, भारत

शोध सार

1857 ई. की क्रांति, सैनिक विद्रोह या भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम, भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं में से एक है। यह एक भारतीय विद्रोह था जिसमें भारतीय सिपाहियों ने योजना बनाई और ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ संघर्ष किया। लम्बे समय से चले आ रहे दोहन और दमन की नीति ने ना सिर्फ सैनिकों बल्कि भारतीय समाज के प्रत्येक वर्ग को प्रभावित किया था। जमींदार वर्ग, शासक, सैन्य वर्ग, किसान, मजदूर सभी ने इस विद्रोह में भाग लिया परन्तु इन सभी वर्गों के उद्देश्य अलग–अलग थे। राष्ट्रीयता की भावना के स्थान पर क्षेत्रीयता की भावना के कारण ही शायद यह विद्रोह उतना सफल नहीं हो पाया जितना होना चाहिए था। इस विद्रोह में कई क्षेत्रीय शासक जैसेः– नाना साहेब, रानी लक्ष्मीबाई, कुँवर सिंह, बहादुर शाह जफर, बेगम हजरत महल, तात्या टोपे, खान बहादुर खान आदि ने भाग लिया था परन्तु उनके उद्देश्य भिन्न–भिन्न थे। यह क्रांति मेरठ से प्रारंभ होती हुई उत्तर भारत के कई राज्यों में फैल गई। यह विद्रोह सशस्त्र विद्रोह के रूप में शुरू हुआ जो ब्रिटिश सरकार के कब्जे के खिलाफ उत्तरी और मध्य भारत में प्रमुखता से देखने को मिलता है। यह विद्रोह चर्बी वाले कारतूस और सैन्य शिकायतों के परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुआ था। सैन्य कारणों के अलावे सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा आर्थिक कारण भी थे जिसने इस क्रांति की रूप रेखा तैयार की थी। हालाँकि कुशल नेतृत्व एवं राजनीतिक एकता के अभाव में एवं उन्नत सैन्य उपकरण के अभाव में यह विद्रोह असफल रहा परन्तु इसके दूरगामी परिणाम हुए। जहाँ इस विद्रोह ने सत्ता को कंपनी के हाथों से बाहर निकाल कर ब्रिटिश ताज के अधीन कर दिया वहीं भारतीयों के बीच राष्ट्रीयता का संचार करना प्रारंभ कर दिया।

मुख्य शब्द

रेड्ड्रेगन, फरमान, व्यपगत नीति, चुँगी, अनुपस्थित प्रभुसत्ता, रेजीमेंट.

परिचय

भारत में अंग्रेजों का आगमन सन् 1600 ई. में प्रारंभ हुआ। 1597 ई. में जॉन मिल्डेन हॉल पहले अंग्रेज थे जो स्थल मार्ग द्वारा भारत पहुँचे थे। रानी एलिजाबेथ से आज्ञा प्राप्त कर पूर्व की ओर व्यापार के उद्देश्य से ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारतीय बन्दरगाहों की ओर रूख किया। 24 अगस्त 1608 ई. को कैप्टन विलियम हॉकिन्स 'हेक्टर या रेड्ड्रेगन' नामक व्यापारिक जहाज से सूरत के बन्दरगाह पर पहुँचे। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी की

पहली आमदनी काफी कम थी बावजूद इसके अपने राजनीतिक संगठन के द्वारा उन्होंने भारत में अपने व्यापार के प्रसार के साथ–साथ सत्ता का भी प्रसार करना शुरू कर दिया। 1630 ई. तक कंपनी ने अपना प्रभाव पूर्वी भारत में बढ़ाना शुरू कर दिया था। ओड़िशा, बंगाल एवं बिहार में कई कारखाने स्थापित कर लिए और 1650–1680 ई. तक मुगल सम्राट से कई फरमान प्राप्त कर चुंगी और सीमा शुल्कों में भी राहत पा ली। नब्बें वर्षों के अंदर ही इस कंपनी ने भारत के तीन प्रमुख बंदरगाहों बम्बई, कलकत्ता एवं मद्रास पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। अग्रेंजों का उद्देश्य ही था लाभ कमाना अतः उन्होंने बंगाल पर कब्जा करने के लिए षडयंत्र रचा और 1757 के प्लासी युद्ध द्वारा बंगाल पर कब्जा कर लिया।

अगले 7 सालों में ही कंपनी ने बक्सर के युद्ध द्वारा भारत में अपने भाग्य को तय कर लिया। 1757 ई. से प्रारंभ हुई यह प्रसार की योजना अगले सौ वर्षो में 1857 ई. की क्रांति में परिणत हुई। इन दो युद्धों की जीत ने ब्रिटिश कम्पनी की शक्ति में वृद्धि की। उनकी सैन्य क्षमता भारतीयों की परम्परागत क्षमता से श्रेष्ठ सिद्ध हुई और उन्होंने भारतीय क्षेत्रों को साम–दाम–दंड–भेद की नीति द्वारा अपने क्षेत्रों में समाहित करना शुरू कर दिया। भारतीय सामाजिक, राजनीति, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक मामलों में हस्तक्षेप करते हुए साम्राज्यवाद के स्वप्न को पूरा करने में लग गए। ईसाई शिक्षा, धर्म परिवर्तन, डलहौजी की हड़प नीति, आर्थिक शोषण, रेल सेवा, अत्यधिक करारोपण, असमानता का व्यवहार, धार्मिक नीतियों में परिवर्त्तन ऐसे कई कारण थे जो 1857ई. की क्रांति को विस्फोटक बनाने में सहायक सिद्ध हुए। हालांकि यह विद्रोह असफल हो गया। इसे पूर्णतया दमन कर दिया गया परन्तु फिर भी इसने अंग्रेजी सत्ता की जड़ें हिला कर रख दी। इस विद्रोह में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से देशी राजाओं, नवाबों और देश भक्तों का संपूर्ण सहयोग एवं योगदान रहा है अतः इस क्रांति को निःसंदेह स्वतंत्रता–प्राप्ति का प्रथम एवं प्रबल प्रयास कहा जा सकता है।

शोध प्रविधि

इस शोध आलेख में विश्लेषणात्मक एवं वर्णनात्मक विधि का प्रयोग किया गया है साथ ही शोध आलेखों, पुस्तकों एवं इंटरनेट का कुशलतापूर्वक प्रयोग किया गया है। अतः इस शोध आलेख को पूर्ण करने हेतु द्वितीयक स्त्रोतों का सहारा लिया गया है।

अवलोकन

ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी की बढ़ती सत्ता के विरूद्ध 1857 ई. की क्रांति भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी। 1857 ई. के मई महीने के 10 तारीख को प्रारंभ हुई यह सैन्य क्रांति जल्द ही एक बड़े विद्रोह का रूप धारण कर चुकी थी। ब्रिटिश सत्ता के अनैतिक निर्णयों के विरूद्ध भारतीयों का यह पहला संघर्ष था जिसमें भारत के उत्तरी तथा मध्य प्रदेशों ने अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया। यही कारण है कि भारतीय इतिहासकार इसे भारत का पहला स्वतंत्रता संग्राम मानते है।

1857 ई. के संघर्ष की स्वरूप की व्याख्या करना आसान कार्य नहीं है। जहाँ एक ओर कुछ भारतीय इतिहासकार इसे भारत का पहला स्वतंत्रता संग्राम मानते है वहीं दूसरी ओर कुछ यूरोपियन इतिहासकार इसे मात्र सैन्य विद्रोह की संज्ञा देते है। यह एक ऐसा विद्रोह था जो मात्र सैनिकों के बीच ही पनपा और जनसाधारण के सहयोग के अभाव में वहीं समाप्त हो गया। "कुछ विद्वानों ने इसे इसाईयों के विरूद्ध प्रारंभ किया गया धार्मिक युद्ध माना है जबकि अन्य इसे रंगभेद के कारण उत्पन्न गोरे एवं काले व्यक्तियों के बीच सर्वश्रेष्ठता के लिए संघर्ष की संज्ञा दी है।"[1]

"सर जॉन लारेन्स और सीले ने तो इसे सैनिक विद्रोह की संज्ञा दी।"[2] रीज के अनुसार यह धर्मान्थों का ईसाइयों के विरूद्ध युद्ध था। बेन्जामिन डिजरेली और अशोक मेहता ने इसे राष्ट्रीय विद्रोह की संज्ञा दी है। मजूमदार ने इसे स्वतंत्रता संग्राम मानने से इंकार कर दिया जबकि एस. एन. सेन इसे स्वतंत्रता संग्राम मानते हैं।

1857 ई. की क्रांति का स्वरूप चाहे कुछ भी रहा हो परन्तु इस सत्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि इसने अल्प काल के लिए ही सही पर अंग्रेजों के विरूद्ध एक ऐसी चुनौती खड़ी कर दी थी जिससे उबर पाना

असंभव प्रतीत हो रहा था। 1857 ई. की क्रांति भारतीय राजनेताओं और साधारण जनता के लिए प्रेरणादायक सिद्ध हुई। यह एक ऐसा मार्ग साबित हुआ जिसका अनुसरण कर भारतीयों ने स्वतंत्रता संग्राम को सफल बनाने का प्रयास किया।

ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा भारत में व्यापार प्रारंभ किया गया जो शीघ्र ही सत्ता प्रसार में बदल गया। 1757 ई. के प्लासी युद्ध ने ब्रिटिश सत्ता को भारत में पाँव पसारने का अवसर दिया और अगले सौ वर्षों तक भारत पर दमनकारी नीतियों द्वारा राज करने का मार्ग प्रशस्त कर दिया। अतः 1857 ई. की क्रांति ने इस मार्ग को अवरूद्ध कर उनके शासन का मूलोच्छेदन करने का प्रयास किया। एक लम्बे समय तक विदेशी ताकतों के द्वारा शोषित होते हुए जब भारतीयों ने विरोध किया तो उसके पीछे एक नहीं कई कारण थे। चर्बी वाले कारतूस एवं सैनिक विद्रोह तो मात्र उस माचिस की तीली के समान थे जिसने राख में दबे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक कारणों से उत्पन्न हुए विस्फोटक रोष को एक ऐसे ज्वालामुखी में बदल दिया जिसके प्रभाव से अंग्रेजी कंपनी की सत्ता ही भारत से समाप्त हो गई और भारत की सत्ता सीधे ब्रिटिश ताज के हाथों में चली गई।

"क्रांति की शुरूआत 10 मई 1857 ई. से मानी जाती है जब मेरठ के सिपाहियों ने ब्रिटिश सत्ता के विरूद्ध विद्रोह कर दिया।"[3] उन्होंने अपने कैदी साथियों को रिहा करवाकर अपने यूरोपियन अफसर का कत्ल कर दिया और दिल्ली की ओर कूच कर गए। "11 मई 1857 ई. को दस्ता दिल्ली पहुँचा जहाँ उसने सरकारी चुँगी दफ्तर में आग लगा दी और लाल किले की तरफ मुड़ गए।"[4] लाल किले पहुँच कर इस दस्ते ने मुगल बादशाह शाह आलम द्वितीय से इनका नेतृत्व स्वीकार करने का आग्रह किया, जिसे बादशाह ने कुछ संकोच के साथ स्वीकार कर लिया। इस प्रकार वृद्ध बादशाह को पूरे हिन्दुस्तान का बादशाह घोषित कर दिया गया। इसके उपरांत सैनिकों ने अंग्रेजों को मार कर दिल्ली पर कब्जा करना प्रारंभ कर दिया। इस प्रकार भारत से विदेशी ताकतों को दूर करने के मार्ग में एक साहसिक परन्तु असफल प्रयास था। जल्द ही यह विद्रोह भारत के अन्य भागों उत्तर, पश्चिम एवं मध्य भारत के कुछ हिस्सों में फैल गई दक्षिण भारत, पंजाब और बंगाल में इसका असर लगभग ना के बराबर था। अगर यह भारत के सभी प्रदेशों में समान रूप से फैल जाता तो सभी लोगों को प्रभावित कर पाता और आज भारत का इतिहास दर्द और यातनाओं से भरा ना होता।

वैसे तो इस घटना की व्यापक स्वरूप 10 मई को देखने को मिलता है परन्तु इस घटना को अंजाम देने वाले कारणों में अनगिनत असंतोष की चिनगारी कई बरसों से सुलग रही थी। अगर राजनीतिक रूप से देखा जाए तो लार्ड डलहौजी की व्यपगत नीति ने भारत के राजनेताओं के बीच एक रोष उत्पन्न कर रखा था। "व्यपगत नीति के अनुसार हिन्दू राजाओं को दत्तक पुत्र को सत्ता हस्तानान्तरण के अधिकार से वंचित कर दिया गया। दत्तक पुत्र उत्तराधिकारी नहीं बन सकते थे।"[5] इस नीति के अनुसार सतारा, जैतपुर, सम्भलपुर, उदयपुर, झांसी, नागपुर को ब्रिटिश शासित राज्य में विलय कर दिया गया। कई अन्य राज्यों को अधिकार पूर्वक ब्रिटिश राज्य में विलय किया गया जिसमें पंजाब, पीगू, सिक्किम आदि थे। अवध राज्य पर कुशासन का आरोप लगाकर ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया। डलहौजी की नीति ने भारतीय शासकों और नवाबों के बीच अविश्वास की स्थिति उत्पन्न कर दी थी। "भारतीयों को यह अहसास हो गया था कि अंग्रेज मेमने के रूप में भेड़िए की भूमिका निभा रहे हैं।"[6]

क्रांति के कई अन्य कारणों में एक वैसे व्यक्तियों के कार्यों पर नियंत्रण था जो कभी भारतीय सेना का अंग हुआ करते थे। वैसे अनियमित सैनिक, पिण्डारी तथा ठगों का दमन करने से और राज्य में शांति स्थापना के प्रयास ने उनकी आजीविका छिन ली थी। वैसे लोगों ने इस विद्रोह में सम्मिलित हो कर ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ अपने रोष को प्रकट किया। राजनीतिक कारणों में ब्रिटिश शासन के 'अनुपस्थित प्रभुसत्ता' के स्वरूप को भी नहीं नकारा जा सकता है। तुर्क, मुगल, पठान जिसने भी भारत को विजित किया वे भारत के ही निवासी बन कर रह गए और यहाँ से प्राप्त धन को यहीं पर खर्च करते रहे परन्तु ब्रिटिश के साथ ऐसा नहीं था। वे यहाँ से धन को मीलों दूर अपने देश में व्यय करते थे। इन्हीं राजनीतिक कारणों के फलस्वरूप 1857 ई. की क्रांति की पृष्ठभूमि तैयार हुई।

भारतीय शासकों के राज्यों के विलय से ना सिर्फ शासक वर्ग वरन् उन शासकों के अधीन कार्यरत भारतीय अभिजात वर्ग भी प्रभावित हुए। वे अपने पदों से वंचित कर दिए गए और उनके सम्मान में कमी आयी। उनकी

आजीविका छिन जाने की वजह से वे निम्नतर जीवन व्यतीत करने को बाध्य हो गए। विद्रोह के प्रारंभ होते ही ऐसे वर्गों ने भी विद्रोहियों का साथ दिया और उनकी संख्या में वृद्धि की।

औद्योगिक क्रांति ने भी भारतीयों की समस्याओं में वृद्धि की। 19वीं शताब्दी का इंग्लैण्ड औद्योगिक क्रांति के कारण विश्व का माल उत्पादक देश बन चुका था। एक ओर उत्पादन के लिए उसे कच्चे माल की आवश्यकता थी तो दूसरी ओर उत्पादित माल को बेचने के लिए बाजार की आवश्यकता थी। दोनों ही आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ब्रिटिश कंपनी ने भारत को चुना। यहाँ से कच्चा माल ब्रिटिश कम्पनियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इंग्लैण्ड भेजा जाने लगा और वहाँ से उत्पादित माल को बेचने के लिए वापस भारत। कम दामों में कच्चे माल को खरीद कर उत्पादित माल को दुगने दामों में बेचना ब्रिटिश कम्पनियों के लिए दोहरे हित की भूमिका निभा रही थी और भारतीय व्यापार तथा व्यापारियों की स्थितियों को दयनीय बना रही थी।

1857 ई. का विद्रोह अंग्रेजी कानून और दमनकारी नीति के विरूद्ध एक संगठित आवाज थी। "अत्याधिक राजस्व के कारण किसान ऋणग्रस्त हो चुके थे। जिस स्थान पर उत्पादन की कोई आशा नहीं थी वहाँ भी अत्याधिक मालगुजारी की माँग ने निश्चित तौर पर किसानों को कर्ज में डुबा डाला।"[7] कई जमीनों को नीलाम कर दिया गया। "1853 ई. में केवल पश्चिमोत्तर प्रांत में 1,10,000 एकड़ जमीन नीलाम की गई थी।" जमीन नीलामी ने सिर्फ जमींदारों को ही नहीं वरन् छोटे किसानों, जोतेदारों, मजदूरों को भी उनकी जमीनों से बेदखल कर दिया। अपना सर्वस्व खो चुके ऐसे वर्गों ने क्रांति को सशक्ता प्रदान की।

जहाँ एक ओर अंग्रेजों की आर्थिक नीतियाँ भारतीय कृषकों पर भारी पड़ रही थी वहीं दूसरी ओर भारतीय व्यापार और उद्योगों की कमर तोड़ रही थी। भारतीय हस्तकला और लघु उद्योग समाप्ति के कगार पर पहुँच गया। "सूती वस्त्र उद्योग को अंग्रेजी नीति ने बरबादी के कगार पर पहुँचा दिया। चरखे की जगह मशीनों द्वारा बुनी जाने वाली वस्त्रों ने ले लिया। इसका अप्रत्यक्ष प्रभाव कपास के उत्पादक किसानों पर पड़ा। कृषि और कृषकों पर अतिरिक्त बोझ बढ़ता ही गया।"[8] इस असंतोष की भावना ने किसानों और खेतिहरों को विद्रोह में शामिल होने को प्रेरित किया।

अंग्रेज भारतीयों को हीनता की दृष्टि से देखते थे। वे जातिभेद की भावना से ग्रसित थे। भारतीयों को अनेक उपनामों काले, सूअर, कुत्ते आदि की संज्ञा देते थे। किसी भी अवसर पर भारतीयों को अपमानित करने से चूकते नहीं थे। स्त्रियों पर भी अत्याचार करते थे। उनके द्वारा किये गए कुकर्मों की उन्हें मामूली सजाएँ प्राप्त होती थी। भारतीयों को शारीरिक एवं मानसिक यातनाएँ दी जाती थी। इनता ही नहीं मिशनरी के द्वारा भारत में ईसाई धर्म का प्रचार और प्रसार का कार्य तेजी से चल रहा था। लोगों को लालच देकर, जबरदस्ती अथवा कई अन्य नीतियाँ लागू कर उन्हें ईसाई बनने पर मजबूर किया जा रहा था। वे प्रायः हिन्दूओं के धर्म का उपहास करते थे। भारत को ईसाई देश में परिणत करने हेतु 1850 ई. में धार्मिक अयोग्यता अधिनियम लागू कर दिया गया जिसके अनुसार हिन्दू धर्म से ईसाई धर्म में परिवर्तित पुत्र को पिता अपनी संपत्ति से बेदखल नहीं कर सकता था। संपत्ति पर उसका अधिकार पूर्ववत् सुरक्षित रखा गया। इसके अलावे रेलवे और जलयान की यात्रा भी भारतीय धर्म के विपरीत थी। रेल के डब्बों में समाज के सभी वर्ग के लोग एक साथ बैठ कर यात्रा करते थे जिससे उनका धर्म भ्रष्ट होता था। समुद्र पार कर दूसरे देश जाना भी हिन्दू के धर्म के विरूद्ध था। "सीताराम नामक एक सिपाही जब अफगानिस्तान से वापस आया तो उसे गाँव से बहिष्कृत कर दिया गया। बैरक के लोगों ने भी उसे जात से बहिष्कृत घोषित कर दिया था।"[9] विद्यालयों में भी बाईबल की शिक्षा ने लोगों के शक को यकीन में बदल डाला कि उनके धर्म और धार्मिक भावनाओं के साथ छेड़–छाड़ किया जा रहा है। धार्मिक भावनाओं से आहत लोग किसी एक ऐसे मौके की तलाश में थे जिससे वे ब्रिटिश सरकार को अपने क्षेत्र से बाहर निकाल फेंके।

ब्रिटिश कंपनी भारत में व्यापारिक उद्देश्य से आयी थी परन्तु सत्ता हासिल होते ही यह भारत की सर्वेसर्वा बन गई। ब्रिटिश सेना में अंग्रेजी सैनिकों का अभाव था अतः उन्होंने भारतीयों को अपनी सेना में लेना प्रारंभ किया। भारतीय सैनिकों के बल पर ही उन्होंने पूरे भारत को अपना गुलाम बना लिया। कंपनी ने अपनी सेना में प्रायः बंगाल, अवध एवं उत्तर पश्चिमी प्रांतों के किसान वर्ग से संबंध रखने वाले व्यक्तियों को रखा था। बंगाल की सेना में उच्च

वर्ग खास कर ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ग शामिल थे। वे निम्नजातिय सैनिकों के साथ कार्य करना अपना अपमान समझते थे। इसी समय लार्ड कैनिंग के द्वारा कुछ ऐसे आदेश पारित किए गए जिससे सैनिकों में असंतोष गहराता चला गया। इस आदेशानुसार सैनिकों की भर्ती में उन्हीं व्यक्तियों को स्थान प्राप्त होता जो किसी भी जगह आने–जाने के लिए सदैव प्रस्तुत रहते। इसका सीधा अर्थ था कि सैनिक समुद्र पर युद्ध के लिए भेजे जा सकते थे जो उनके धर्म के विरूद्ध था। दूसरे आदेश के द्वारा सैनिकों को पत्राचार के लिए टिकट के रूप में महसूल देने को विवश किया गया जो पूर्व में निःशुल्क था। तीसरे आदेशानुसार परदेश गए सैनिक जो अनुपयुक्त घोषित किए जा चुके उनके पेंशन को बन्द कर छावनी के कार्य के लिए नियुक्त कर दिया गया। इस प्रकार सैनिकों के सारे हितों को बाँध दिया गया और उन्हें हीन भावना से ग्रसित किया गया।

इसके अलावे सैनिक सेवा शर्तें भी बहुत अच्छी नहीं थी, सैनिकों का वेतन नाम मात्र का था। "पैदल सेना को मात्र सात रूपये और घुड़सवार सैनिक को 27 रूपये प्राप्त होते थे। वर्दी, भोजन आदि पर खर्च के बाद बहुत मुश्किल से एक या दो रूपये ही बच पाते थे। एक भारतीय सैनिक अपने अंग्रेज साथी का सहायक मात्र था। समान पद पर होते हुए भी उसके साथ भेद–भाव किया जाता था। ना तो उन्हें समान अधिकार प्राप्त था और ना ही समान पदोन्नति।

नए भूराजस्व कानूनों ने भी भारतीय सैनिकों को बहुत प्रभावित किया। सैनिक आम जनता से अलग नहीं थे। कहीं ना कहीं वे इन परिवारों से जुड़े थे और अंग्रेजी शासन द्वारा चलाए जा रहे दमन चक्र के प्रति जागरूक भी हो गए थे। उनके द्वारा दाखिल की 15 हजार अर्जियाँ जो भूराजस्व के विरूद्ध थी इस बात का प्रमाण थी कि वे इन कानूनों से ग्रस्त थे। नागरिकों ने इस सैनिक विद्रोह में खुल कर साथ दिया और वे विद्रोहियों का समर्थन हर प्रकार से करने की कोशिश करते थे। सैनिकों ने भी ग्रामीणों को इन अंग्रेजी दमन नीति से मुक्त करने का प्रयास किया। उन्होंने अपने कार्यों द्वारा अंग्रेजों में भय उत्पन्न करने का प्रयास किया। विद्रोहियों ने सरकारी इमारतों को आग के हवाले कर दिया। बैरकों को तहस–नहस कर डाला, जेल के द्वार खोल दिए गए और सभी कैदियों को मुक्त करवा लिया गया। सरकारी खजाने को लूट कर विद्रोहियों की सहायता की गई इसने समाज में उपस्थित सभी वर्ग के लोगों को प्रभावित किया और यह विद्रोह मात्र सैनिक विद्रोह ना रह कर सर्व साधारण वर्ग का विद्रोह बन गया।

ब्रिटिश कंपनी ने भारतीय अर्थव्यवस्था को भी पूरी तरह से समाप्त कर डाला। व्यापार पर कई प्रकार के कर लगाए गए। ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जिससे पता चलता है कि ब्रिटिश कंपनी के कई अधिकारियों ने मनमाने ढ़ंग से कर लगाकर बहुत सारे धन अर्जित किए। स्क्रेप्टन ने सीटाट पर गैर कानूनी तरीके से धन एकत्रित करने का आरोप लगाया था। "रिचर्ड वारबेल ने भी अपने पत्रों में जिक्र किया है कि उसने वस्तुओं पर व्यापार कर लगाकर गैर कानूनी तरीके से धन बनाया।"[10] भारत पर आक्रमण कर भारत के धन को लूटना कोई नई बात नहीं थी। परन्तु ब्रिटिश शासन के पूर्व के आक्रमणकर्त्ता भारतीय संस्कृति का अंग बनते चले गए। ब्रिटिश आक्रमणकारियों ने इस नीति का अनुसरण नहीं किया बल्कि वे अपनी मातृभूमि के प्रति ज्यादा समर्पित रहे तथा भारत से धन को लूट कर इंग्लैण्ड भेजते रहे। डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार भारत इंग्लैण्ड के लिए एक ऐसी दुधारू गाय थी जिसे जब चाहो उपयोग में ले आओ और जिसके अपने ही पुत्र भूखों मर रहे थे।

राज्यों के अपहरण नीति के तहत भूमि और क्षेत्र ब्रिटिश कंपनी के अन्तर्गत समाहित हो जाती थी। अपहरण के पश्चात् वहाँ के किसानों के दुर्दिन प्रारंभ हो जाते थे। पर्याप्त भूमिकर लगाकर भूराजस्व एकत्रित किया गया। नई बंदोबस्त नीति के अनुसार बिचौलियों के पद को समाप्त कर दिया गया। 1852 के एक्ट् के अनुसार एक नए कमीशन का नाम दिया गया। इस नियम के अनुसार भूस्वामियों के जमीन के कागजों की जाँच–पड़ताल को शुरू कर दिया गया। जिसका परिणाम यह हुआ कि बीस हजार परिवार अधिकार–विहीन हो गए। अतः जमींदार वर्ग, किसान वर्ग, और मजदूर वर्ग सभी ब्रिटिश नीति से आतंकित हो गए। राजा का अधिकार, जमींदारों के जमीन, किसानों की उपज सभी ब्रिटिश कंपनी के अधीन होते चले गए। राजा के दरबार में उपस्थित रहने वाले संगीतज्ञ, कलाकार, नृतकों तथा अन्य लोग भी बेसहारा हो गए। उनका जीवन अस्त–व्यस्त हो गया। मद्रास कौंसिल के

कम्पनी के अधिकारी जान सलीवान ने यह स्पष्ट किया कि "स्थानीय राजा का स्थान अंग्रेज कमीशनर द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है।"[10] उनके अनगिनत दरबारियों की जगह मात्र तीन या चार अंग्रेज साथी नियुक्त कर दिए जाते थे। राजा की असंख्य सेना का स्थान मात्र कुछ सौ ब्रिटिश सैनिक ले लेते थे। दरबार की समाप्ति कर दी जाती थी। व्यापार नष्ट हो जाता था और समृद्ध राजधानी धीरे–धीरे पतन की ओर अग्रसर हो जाती थी। स्थानीय जनता गरीब हो जाती है और अंग्रेज संपन्न तथा समृद्ध। अंग्रेज गंगा के बैंको से धन एकत्रित कर टेम्स के बैंक में जमा करते थे।

इस क्रांति में मिशनरियों की बढ़ती संख्या का भी योगदान था। 1813 के चार्टर एक्ट के अनुसार भारत में ईसाई मिशनरियों को धर्म और अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार का अधिकार प्राप्त हो गया। भारतीय तबके के वैसे लोग जो पीड़ित थे उन्हें ईसाई बनाया जाने लगा। इस कार्य में जहाँ उन्होंने बल का प्रयोग किया वहीं धोखाधड़ी का भी सहारा लिया। 1837 ई. में जब अकाल पड़ा तो मिशनरियों ने अनाथों का ईसाईकरण कर दिया। "रिलीजस डिसएविलिटीज एक्ट (1856) में ईसाई धर्म स्वीकार करने वाले हिन्दुओं को कई सुविधाएँ प्रदान की।"[11] इसके अलावे सामाजिक सुधार की ओर एक और कदम बढ़ाते हुए ब्रिटिश सरकार ने सती प्रथा की समाप्ति और विधवा विवाह का वैधानिकीकरण कर भारतीय जनता के धार्मिक विश्वास पर कुठाराघात किया। भारतीयों ने इसे धार्मिक नीति पर ब्रिटिश का हस्तक्षेप माना।

रेलवे का निर्माण तथा तार का विस्तारीकरण भारतीय जनता को उद्वेलित करने का प्रमुख कारण बन गया। गंगा से निकाली गई नहर ने ब्राह्मण को भयभीत कर दिया और इसे उन्होंने जादुई करतब बताया। लोगों के मन में यह विश्वास उत्पन्न होने लगा कि भारतीयों का ईसाईकरण किया जा रहा है। अफवाह तो यह भी थी कि सरकार नमक व आटे में गाय के हड्डी का चूरा मिलाती है। घी में भी मिलावट कर बेचा जाता है। कुओं का पानी इसलिए अशुद्ध माना जाने लगा कि ब्रिटिश उसमें सुअर और गायों का माँस डाल देते है।

धार्मिक विश्वास के अंतर्गत भारतीयों को यह पूरा विश्वास था कि 1857 ई. प्लासी के युद्ध का शताब्दी दिवस था और इस दिन ब्रिटिश शासन का पतन होने वाला है। अफवाह स्वरूप गाँवों में चपाती के वितरण का भी प्रमाण मिलता है, इसके कारणों और परिणामों का कुछ विशेष वर्णन उपलब्ध नहीं है। गाँवों में एक चपाती में 5 और चपाती मिलाकर बाँटने की गाथा सुनी जाती है। इसके अलावे कमल के फूल का वितरण किया जाता था। कारण चाहे कुछ भी हो इन घटनाओं ने जन असंतोष को चरम सीमा पर पहुँचा दिया।

इसके अलावे इंग्लैण्ड और क्रीमिया के युद्ध में इंग्लैण्ड की हार ने भारतीय जनता की आशा में बढ़ोत्तरी की। अवध के नवाब, दिल्ली के सुल्तान और भूतपूर्व सैनिक ने इस क्रांति में अपना सहयोग प्रदान करने का आश्वासन दिया। उनके असंतोष ने विद्रोह को भड़काने में पूर्ण रूप से सहयोग प्रदान किया। भारतीय जनजातियाँ भी ब्रिटिश शासन के विरूद्ध अपना आक्रोश प्रकट कर रही थी। 1855–56 ई. में बिहार और बंगाल की प्रमुख जनजाति संथाल भी ब्रिटिश शासन का सफाया करने को आतुर थी। "वे तीर–धनुष और कुल्हाड़ी की सहायता से ब्रिटिश–शासन के खिलाफ मैदान में उतर गई।"[12] कम ही समय के लिए मगर संथालों के जन–विद्रोह ने अपनी क्षमता को स्पष्ट कर दिया और अपने क्षेत्र से ब्रिटिश शासन का सफाया कर दिया। इस विद्रोह ने लागों के मन में इस धारणा को स्पष्ट कर दिया कि एकजुट हो कर ब्रिटिश सेना को परास्त करना नामुमकिन नहीं होगा। जंगलों पर अधिकार कर ब्रिटिश सरकार ने वहाँ के जनजातियों के जीवन को अस्त–व्यस्त कर डाला था जिसके कारण उनके मन में विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी थी। इस विद्रोह ने थोड़े समय के लिए ही ब्रिटिश के मन में आतंक भर दिया था।

भारतीय सैनिकों का असंतोष उस समय चरम सीमा पर पहुँच गया जब उनके बीच यह अफवाह फैली कि अब उन्हें ऐसे कारतूस का प्रयोग करना पड़ेगा जिसमें सूअर और गाय की चर्बी से बने खोल को अपने दाँतो से खींच कर अलग करना पडेगा। यह हिन्दू और मुस्लिम दोनों के लिए ही धर्म नष्ट करने वाली बात थी। सरकार द्वारा सिपाहियों के लिए नए प्रकार की बन्दूक लाई गयी जिसे ऐनफील्ड बन्दूक कहा गया इसमें कारतूस भरने के लिए सिपाहियों को उसे अपने दाँतों से काटना पड़ता था अतः सिपाहियों ने इसका विरोध किया। ब्रिटिश सरकार

द्वारा इस अफवाह का खंडन करने का भरसक प्रयास किया गया परन्तु इस चिंगारी ने पूरे उत्तर और पूर्वी भारत को अपने चपेट में ले लिया। ब्रिटिश सरकार द्वारा जबरदस्ती करने के कारण बैरकपुर के सैनिकों ने विद्रोह कर दिया। इसी रेजीमेंट के एक बहादुर सैनिक मंगल पांडे ने अपने अफसर (एजुटेंट) पर आक्रमण कर उसे मार डाला। परिणाम स्वरूप 34वीं एन0 आई. रेजीमेंट को सरकार ने भंग कर डाला। सभी विद्रोहियों को अपराधी घोषित कर उन्हें दण्ड प्रदान किया गया। इसी प्रकार जब मेरठ में मई के महिने में सैनिकों ने इस बन्दूक और कारतूस के प्रयोग से मना किया तब 85 सैनिकों को दोषी मानते हुए न्यायालय ने लम्बे समय के लिए उन्हें कारावास भेज दिया। अंततः 10 मई 1857 ई. को सैनिकों ने ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध खुलकर विद्रोह प्रारंभ कर दिया और अंग्रेज अधिकारियों पर हमले करना प्रारंभ कर दिया। सैनिक मेरठ छावनी को लूटते हुए एवं अपने सभी कैदी साथियों को आजाद करते हुए दिल्ली की ओर कूच कर गए।

दिल्ली पहुँच कर विद्रोहियों ने मुगल सम्राट को पूरे भारत का सम्राट घोषित कर दिया और 12 मई 1857 ई. तक दिल्ली को अपने कब्जे में कर लिया। शीघ्र ही समस्त विद्रोह की आग ने उत्तरी और मध्य भारत को अपने कब्जे में ले लिया। इलाहाबाद, लखनऊ, कानपुर, बरेली, बनारस, बिहार, सतारा, झांसी जैसे प्रदेशों में विद्रोह की लहर चल पड़ी। मई 1857 ई. से प्रारंभ हुआ यह विद्रोह अप्रैल 1858 ई. तक कमोवेश भारत के विभिन्न प्रांतों में चलता रहा। दिल्ली पर अंग्रेजों ने सितम्बर 1857 ई. तक पुनः अधिकार कर लिया। मुगल सम्राट को बन्दी बनाकर रंगून निर्वासित कर दिया गया। उनके पुत्रों और पोते की गोली मार कर हत्या कर दी गई।

इसके बाद ब्रिटिश सेना ने एक–एक कर अन्य सभी प्रांतों लखनऊ, बरेली, कानपुर, झांसी आदि को अपने अधीन कर लिए। लखनऊ के विद्रोह को सितम्बर 1857 ई. तक कुचल दिया गया। कानपुर पर दिसम्बर तक अंग्रेजों का पुर्नाधिकार कर लिया। झांसी पर भी अप्रैल 1858ई. तक ब्रिटिश सरकार ने कब्जा जमा लिया। ग्वालियर जून 1858 तक अंग्रेजों के कब्जे में आ गया। अंततः जुलाई 1858ई. तक विद्रोह पूर्णतया शान्त हो गया।

विद्रोह की असफलता के कारण

भारत का पहला स्वतंत्रता संग्राम मात्र कुछ ही महीनों में समाप्त हो गया। इस विद्रोह में भारत के लगभग प्रत्येक वर्ग ने हिस्सा लिया था परन्तु मात्र एक वर्ष के अन्दर ब्रिटिश सरकार ने ना सिर्फ इस विद्रोह को समाप्त कर दिया बल्कि भारत पर अपना शिकंजा और मजबूत बना लिया। भारतीयों के द्वारा प्रारंभ किए गए विद्रोह की असफलता का प्रमुख कारण राष्ट्रवाद की भावना का अभाव था। भारतीय राज्य के राजा और नवाब अपने प्रांतो और क्षेत्रों के प्रति ही जिम्मेवार थे। उनमें अपने देश के प्रति राष्ट्र प्रेम का अभाव था। इस विद्रोह में मात्र ऐसे शासक राजा या नवाब सम्मिलित थे जिन्होंने अपना राज्य, क्षेत्र या वृति को खो दिया था। इन शासकों में कोई भी इतना सशक्त नहीं था जो संगठित रूप से इस विद्रोह का नेतृत्व कर पाता। ना तो उनकी सैन्य व्यवस्था इतनी विकसित थी और ना ही उनके पास आधुनिक हथियार थे। अगर योजनाओं की बात की जाए तो भारतीय शासकों ने व्यक्तिगत रूप से अंग्रेजों के विरूद्ध योजनाएँ बनाई और उसे अमल में लाया। सामूहिक रूप से एकता और राष्ट्रीयता का अभाव इस विद्रोह में स्पष्ट परिलक्षित होता है जबकि अंग्रेजों ने एकजुट होकर और राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर इस विद्रोह को कुचलने में अपनी सारी शक्ति लगा दी।

1857 ई. का यह संग्राम भारत के मात्र कुछ ही प्रदेशों तक सीमित रहा। भारत के अधिकांश शासक अंग्रेजों के विश्वसनीय पात्र बने रहे। पंजाब, राजस्थान, सिन्ध प्रान्त, बम्बई, मद्रास, अफगानिस्तान आदि प्रदेशों के शासकों ने अंग्रेजों की सहायता की और इस विद्रोह को दबाने में अंग्रेजों को सहयोग प्रदान करते रहे। अंग्रेज अफसरों ने कुटनीति का सहारा लेते हुए भारत के एक बड़े वर्ग को इस संग्राम से दूर रखा। उनके द्वारा जागीर और प्रान्तों का अधिकार वापस प्रदान करने का आश्वासन पाकर कई भारतीय शासकों ने इस संग्राम से किनारा कर लिया। इस कारण विद्रोह बहुत लम्बे समय तक नहीं चल पाया और इसका दमन कर दिया गया।

ना सिर्फ शासक वर्ग वरन् महाजन, सूदखोर, व्यापारी तथा अन्य जमींदारों ने भी अंग्रेजों का साथ दिया और इस विद्रोह में हिस्सा नहीं लिया। व्यापारी विद्रोहियों का खर्च उठाने के लिए तैयार नहीं थे अतः विद्रोही उनपर

आक्रमण कर उनके माल को लूट लेते थे। दूसरी ओर व्यापारी वर्ग ब्रिटिश व्यापारियों के साथ मिलकर मुनाफा कमा रही थी जिससे उनकी सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति में इजाफा हो रहा था, अतः विद्रोहियों का साथ ना देकर अंग्रेजों के पक्ष में रहने में ही उन्होंने अपनी भलाई समझी। महाजन, सूदखोर तथा जमींदार भी अंग्रेजों के पक्षधर बने रहे क्योंकि विद्रोहियों ने सर्वप्रथम इनको ही अपना निशाना बनाया था।

भारत का एक बड़ा वर्ग जो आधुनिक शिक्षा का पक्षधर था और रूढ़िवादी सामाजिक परम्पराओं का कट्टर विरोधी था। वे भारत को आधुनिक शिक्षा द्वारा विकसित करने का स्वप्न देख रहे थे। उनके मन में यह भ्रम था कि अंग्रेज अफसर भारत का आधुनिकीकरण करने में सहायक सिद्ध होंगे, अतः उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता के सेनानियों की सहायता ना कर अंग्रेजों का साथ दिया। परिणाम स्वरूप भारत का शासन एक ऐसे हाथों में पहुँच गया जिसने ना सिर्फ राजनीतिक रूप से बल्कि आर्थिक रूप से भी देश को पंगु बना दिया।

विद्रोह के नेताओं के बीच उद्देश्य की कमी थी। वे अपने क्षेत्र से ब्रिटीश शासन को निष्कासित करने के लिए प्रतिबद्ध थे और कहीं ना कहीं इस उद्देश्य को पूरा करने के प्रत्यनशील भी थे परन्तु ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंकने के बाद उस क्षेत्र के लिए किस प्रकार की रणनीति बनाई जाए, इसको सफलतापूर्वक चलाने के लिए कैसी संस्था का निर्माण किया जाए यह बातें उनकी समझ से परे थी। वे प्रायः आपस में शंका और ईर्ष्या से ग्रसित थे। ब्रिटिश अफसरों को परास्त करने के बाद वे निष्क्रिय हो जाते थे। इसके विपरीत ब्रिटिश कंपनी के अन्तर्गत निकॉलसन, आउटड्रम, लारेन्स बंधु, हेवलॉक, एडवर्डस जैसे योग्य एवं विशिष्ट अफसर कार्यरत थे। इनके अनुभव एवं योग्य दिशा–निर्देश ने विदेशी सत्ता को भारत में अपना प्रभाव जमाने में सहायता प्रदान की।

ब्रिटिश सरकार की दमन नीति ने साधारण वर्ग का हौसला पस्त कर दिया। वे क्रांति को पूर्ण रूप से दबाने के लिए निरीह जनता के साथ क्रूरता और बर्बरता पूर्वक व्यवहार करने लगे। साधारण जनता के घरों को अग्नि के हवाले कर दिया गया। उनकी फसलों को बर्बाद किया गया। नगरों को लूट कर उन्हें जला देना आम बात हो गई थी। कई क्रान्तिकारियों को बन्दी बनाकर सरेआम फाँसी पर लटका दिया गया। लूट और रक्तपात में अंग्रेजों ने तो तैमूर और नादिरशाह की क्रूरता को भी मात दे डाली थी। लखनऊ, अवध एवं दिल्ली को श्मशान के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। सैकड़ों मनुष्यों को उनके घर से बाहर कर दिया गया उनकी सम्पत्ति लूट ली गई। नगर में स्थापित मन्दिर और मस्जिदों को ध्वस्त कर दिया गया। इतना ही नहीं मुस्लिमों को सूअर की खाल में सिलवा दिया गया। उनके शरीर को सूअर की चर्बी द्वारा अपवित्र कर उन्हें जला दिया गया। निरीह स्त्रियों और बच्चों को भी उनके कोपभाजन का शिकार बनना पड़ा। ऐसे बर्बरता और अमानवीय कार्यों ने क्रांतिकारियों को पीछे हटने पर विवश कर दिया और वे अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल रहे।

विद्रोह के सभी महान नेता या तो ब्रिटिश सरकार की कुनीतियों के शिकार हो गए या वीरगति को प्राप्त हुए। ब्रिटिश सरकार धन, सैनिक, भारतीय शासकों के सहयोग और कूटनीतिक युक्ति के द्वारा इस विद्रोह को दबाने में सफल रही। 1859 ई. तक ब्रिटिश सत्ता ने पूरी तरह से भारत पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। इस विद्रोह ने अंग्रेजों को अपने प्रशासन व्यवस्था को सुधारने के लिए विवश कर दिया। कहीं ना कहीं इस विद्रोह ने ब्रिटिश सत्ता की नींव हिला डाली थी। इस क्रांति के पश्चात् भारत में एक नए युग का सूत्रपात हुआ जो ब्रिटिश उपनिवेशवाद का प्रसार करते हुए अगले सौ वर्षों तक विद्यमान रही।

विद्रोह का परिणाम

क्रांति के दमन के उपरांत उनके कारणों की समीक्षा की गई और परिणामस्वरूप भारतीय औपनिवेशिक शासन में आमूल–चूल परिवर्त्तन किए गए। अंग्रेजी साम्राज्य के शासन को भविष्य में सुरक्षित रखने के लिए सामाजिक, प्रशासनिक, शैक्षणिक, राजनीतिक आदि क्षेत्रों में परिवर्त्तन किए गए। सैनिक एवं असैनिक पदों को यूरोपीय नियंत्रण में जकड़ दिया गया। फूट डालो और राज करो की नीति का अनुसरण किया गया।

ब्रिटिश सत्ता ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों से निकलकर ब्रिटिश ताज के अधीन हो गई। शासन का भार ब्रिटिश सरकार के एक मंत्री (सेक्रेटरी ऑफ स्टेट) के हाथों में सौंप दिया गया। गर्वनर जनरल का स्थान वायसराय ने ले

लिया। इसकी सहायता के लिए 15 सदस्यों वाली एक मंत्रणा परिषद् की स्थापना की गई जिसके 8 सदस्य सरकार द्वारा और 7 सदस्य कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के द्वारा चुने जाते थे। दूसरे शब्दों में सरकार सीधे तौर पर भारतीय मामलों के लिए उत्तरदायी हो गई।

साम्राज्यवादी नीति का परित्याग कर स्थानीय शासकों एवं नवाबों के अधिकार तथा गौरव एवं सम्मान की रक्षा का आश्वासन दिया गया। शासकों को अपने प्रांतों का राजा घोषित किया गया। गोद लेने की प्रथा पुनः प्रारंभ कर दी गई। सभी विद्रोहियों को जो अंग्रेजी प्रजा के हत्या में शामिल नहीं थे उनको क्षमा कर दिया गया। वैसे शासक, जागीरदार और जमींदार जिन्होंने इस विषम परिस्थिति में अंग्रेजों का साथ दिया था उन्हें ईनाम और पट्टी से नवाजा गया। अंततः वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के स्तम्भ के रूप में परिवर्तित हो गए।

1861 ई. में भारतीय जनपद सेवा अधिनियम के तहत लंदन में प्रतिवर्ष प्रतियोगिता परीक्षा का आयोजन किया जाने लगा। इस प्रतियोगिता परीक्षा में भारतीय भी शामिल हो सकते थे। इस परीक्षा में प्रत्येक वर्ष एक–दो भारतीय सफल हो कर सिविल सर्विस के गौरवपूर्ण पदों पर पहुँचने लगे परन्तु इनकी संख्या यूरोपीयनों की अपेक्षा नगण्य थी।

सेना का पुर्नगठन किया गया। इस बार फूट डालो और राज करो की नीति के तहत सेना में भर्ती होने वाले उम्मीदवारों को दो वर्गो में बाँट दिया गया। 1857 ई. के विद्रोह में भाग लेने वाली सेना जो मुख्यतः अवध, बिहार, मध्य भारत और दक्षिण भारत से थे और जिन्होंने लम्बे समय तक अंग्रेजी शासन को भारत में बनाए रखने के लिए मदद की थी उन्हें गैर लड़ाकू सेना घोषित कर दिया और सेना की सेवा का दरवाजा उनके लिए खोल दिया। यह वही लोग थे जिन्होंने विद्रोह को दबाने में अंग्रेजी सरकार की भरपूर मदद की थी। सेना में यूरोपीयन् सदस्यों की संख्या में बढ़ोत्तरी की गई। ऊँचे और महत्वपूर्ण पदों पर भारतीयों की बहाली बंद कर दी गई और उन पदों पर यूरोपीयन सेना के दावेदारी को निश्चित कर दिया गया।

सैनिकों की साम्प्रदायिक, जातिगत, कबीलाई और क्षेत्रीय निष्ठाओं को प्रोत्साहित किया गया। उनके बीच राष्ट्रीयवाद की भावना को पनपने से रोकने के लिए हर संभव प्रयास किए गए। उन्हें समाचार पत्रों, पत्रिकाओं और राष्ट्रवादी प्रकाशनों से दूर रखा गया। सेना को जनता के जीवन और विचारो से अलग–थलग रखने का भरसक प्रत्यन किया गया। भारतीय सेना शुद्ध रूप से ब्रिटिश सत्ता की भाड़े की सेना बन कर रह गई।

प्रशासन का विकेन्द्रीकरण करते हुए नगरपालिका और जिला परिषद् द्वारा स्थानीय शासन को प्रोत्साहित किया गया। भारतीयों को प्रशासन से जोड़कर उन्हें राजनीतिक रूप से संतुष्ट करने का प्रयास किया गया। इसके द्वारा उन्होंने शासक और शासित के बीच आने वाली दूरी को भी कम करने का प्रयास किया गया। यह अनुमान लगाया गया कि स्थानीय तौर पर विधान कार्य में सहकारी बनने से ब्रिटिश अफसर भारत के लोगों की भावनाओं से अवगत हो पाएँगे और आपसी मतभेद को दूर करने का अवसर उत्पन्न हो पाएगा। उदाहरण के तौर पर भारतीय परिषद् अधिनियम 1861 को लागू किया गया।

भारतीय जनता जिसने कभी भी सांप्रदायिकता की बात भी नहीं सोची थी अंग्रेजों ने उनके मन में सांप्रदायिकता का जहर बोना शुरू कर दिया। जनता को उसके शासक के विरूद्ध, एक जातिवर्ग को दूसरे जातिवर्ग क्रे विरूद्ध और मुस्लिमों को हिन्दूओं के विरूद्ध भड़काना शुरू कर दिया। क्रांति से पूर्व जो एकता देखने को मिल रही थी वह कहीं लोप हो गई थी। विदेशी साम्राज्यवाद का विस्तारीकरण कहीं ना कहीं भारतीय जनता को दो धर्मों और विभिन्न जातियों में बाँटने में सफल रहा। उनके द्वारा घोले गए सांप्रदायिकता के इस जहर का असर इतना गहरा था कि सालों बाद जब भारत को स्वाधीनता प्राप्त हुई तो भारत जातीय सांप्रदायिकता के आधार पर दो राष्ट्रों में विभक्त हो गया।

निष्कर्ष

1857 ई. का विद्रोह आकस्मिक या एक रात का विद्रोह नहीं था। ब्रिटिश सत्ता का साम्राज्य विस्तार, राजनीतिक हस्तक्षेप, सामाजिक सुधार, शिक्षा का प्रसार, आर्थिक दोहन, जातिगत तिरस्कार, मिशनरियों का आगमन,

ईसाईकरण ऐसे कई कारण थे जिन्होंने इस विद्रोह को भड़काने का कार्य किया। इस चतुर्दिक असंतोष का परिणाम था 1857 ई. की क्रांति जिसने कुछ ही महिनों के लिए ही सही मगर ब्रिटिश सत्ता की नींव हिला डाली। 1757 ई. से प्रारंभ हुई ब्रिटिश सत्ता धीरे–धीरे भारतीय प्रांतों और गाँवों को अपने शासन–क्षेत्र में सम्मिलित करती जा रही थी और उन क्षेत्रों का आर्थिक दोहन कर अपने व्यक्तिगत सम्पत्ति में बढ़ोत्तरी कर रही थी। उनके साम्राज्य विस्तार एवं धन–लोलुपता की कोई सीमा ना था, अतः क्षुब्ध भारतीयों ने उनके शासन के विरूद्ध अपना रोष प्रकट करना प्रारंभ कर दिया। 1857 ई. के विद्रोह के स्वरूप को लेकर भारतीय और यूरोपीयन विद्वानों के बीच अनेक मतभेद है। यूरोपियन विद्वान इसके मात्र सैनिक विद्रोह या विपल्व मानते है जबकि भारतीय विद्वान इसे भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम मानते है। इसका वास्तविक स्वरूप चाहे कुछ भी रहा हो, शीघ्र ही यह अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरूद्ध एक कड़ी चुनौती के रूप में प्रकट हुआ। इस युद्ध का प्रारंभ भले ही सैनिक वर्ग द्वारा हुआ था परन्तु शीघ्र ही इस विद्रोह में भारत के प्रत्येक वर्ग ने हिस्सा लेना प्रारंभ कर दिया। सीमित क्षेत्रों में ही मगर असैनिक वर्ग विशेषकर शासक, जमींदार, रियासतों के राजा एवं नवाब, किसान सभी ने इसमें अपना योगदान दिया।

अंग्रेजों ने भारत की भूमि का उपयोग व्यापार को बढ़ाने से प्रारंभ किया था, परन्तु शीघ्र ही उसने पूरे भारतीय प्रायद्वीप को अपने मकड़जाल में उलझा कर उनके स्वामी बन बैठे। क्रूरता, अन्याय और बर्बरता की मिसाल पेश करते हुए वे भारत पर अपना अधिकार जमाने लगे। भारतीयों को उनके ही देश में अपने संसाधनों के प्रयोग से वंचित किया जाने लगा। उनकी रियासतें छीन ली गई। उन्हें बेघर कर दिया गया। सैनिक कार्य में लगे व्यक्तियों के साथ नीचता का व्यवहार किया जाता था। उन्हें प्रताड़ित और अपमानित किया जाता था। अंततः गाय और सूअर की चर्बी लगे कारतूस की घटना ने इस विद्रोह की अग्नि को ज्वालामुखी में परिवर्तित कर दिया। साधारण सा दिखने वाला यह सैनिक विद्रोह इतना सशक्त साबित हुआ कि वर्षो बाद भी जब भारत की स्वतंत्रता के लिए राजनीतिक नेता उभरना शुरू हुए तो उन्होंने इस संग्राम से प्रेरणा लेना प्रारंभ किया। भारतीय स्वतंत्रता की ओर बढ़ता हुआ यह पहला कदम औपनिवेशिक भारत में कई सुधारों की तरफ बढ़ना शुरू किया। इस संग्राम से जुड़े राजनीतिक नेता भले ही अंग्रेजों को भारत से निकालने में असफल रहे हों परन्तु कहीं ना कहीं उन्होंने ब्रटिश सत्ता में आतंक उत्पन्न कर दिया था। यह एक ऐसा विद्रोह था जिसने फिर से एक बार यह सिद्ध किया था कि मात्र मुट्ठी भर भारतीय किसी भी मुश्किलों का सामना करने में सक्षम है। अगर तत्कालीन परिस्थितियों में इस संग्राम को एक सशक्त और कुशल नेता का नेतृत्व प्रदान हो जाता एवं वैसे शासक तथा अन्य भारतीय जो निष्क्रिय रूप से सिर्फ तमाशा देख रहे थे और ब्रिटिश सत्ता के पिट्ठु बने हुए थे, एकजुट होकर संग्राम में अपना सहयोग प्रदान करते तो शायद हमारा भारत दो सौ वर्षों तक पराधीनता की जंजीरों में जकड़ा ना होता।

संदर्भ सूची

1. ग्रोवर बी. एल., मेहता अलका, यशपाल, *आधुनिक भारत का इतिहास,* एस चाँद एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली, 2010, पृ.– 183।
2. उपरोक्त।
3. बंधोपाध्याय शेखर, *प्लासी से विभाजन तक और उसके बाद,* अनुवादक नरेश नदीम, ओरियंट ब्लैक स्वान प्राइवेट, लि0, नई दिल्ली, 2015, पृ.– 170।
4. चन्द्र विपिन, *भारत का स्वतंत्रता संघर्ष,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली महाविद्यालय, दिल्ली, 2005, पृ.– 1।
5. ग्रोवर बी. एल., मेहता, *आधुनिक भारत का इतिहास,* एक नवीन मूल्यांकन, एस चाँद एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली, 2010, पृ.– 188।
6. उपरोक्त।

7. चन्द्र विपिन, *भारत का स्वतंत्रता संघर्ष,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली महाविद्यालय, दिल्ली, 2005, पृ.– 5।
8. ग्रोवर बी. एल., मेहता, *आधुनिक भारत का इतिहास,* एक नवीन मूल्यांकन, एस चाँद एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली, 2010, पृ.– 190।
9. चन्द्र विपिन, *भारत का स्वतंत्रता संघर्ष,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली महाविद्यालय, दिल्ली, 2005, पृ.– 4।
10. प्रसाद आई एण्ड सूबेदार, (1951) एस.के., *ए हिस्ट्री ऑफ मार्डन इंडिया,* इंडियन प्रेस, नई दिल्ली, पृ.– 238।
11. छावडा जी. एस. द्विवेदी, एस. डी., *आधुनिक भारत का इतिहास एक प्रगत अध्ययन,* भाग–2, 1813–1919, स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्रा. लि., नई दिल्ली, पृ.– 274।
12. चन्द्र विपिन, *आधुनिक भारत,* अनुवादक श्याम बिहारी राय, एन. सी. ई. आर. टी., नई दिल्ली, पृ.– 110।

––==00==––